© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

# किरातार्जुनीय में उत्प्रेक्षा अलङ्.कार का प्रयोग : एक अध्ययन

**डॉ0 ज्योति**
**एम.ए., पीएच.डी. (संस्कृत)**
**बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)**

**सारांश**- किरातार्जुनीयम् में उत्प्रेक्षा अलङ्.कार–विनियोजन–शत्रु से किये गये अपकारों का स्मरण कर विक्षोभ को प्राप्त अर्जुन के ज्येष्ठ भ्राता भीमसेन को इस तरह विवेचनापूर्वक नीतिमार्ग का उपदेश करते हुये युधिष्ठिर के पास, स्वयम् अभिलक्षित मनोरथ–सिद्धि के सदृश, पराशर पुत्र श्री वेदव्यास का आगमन हुआ। भगवान वेदव्यास सौम्य निरीक्षण से स्वच्छन्द पशु–पक्षियों के हृदय में शान्ति स्थापित करते थे। उनका तेजःपुंज अत्यन्त समुज्जवलन्त तथापि अवलोकन–योग्य, दृष्कृतों का नाशक था। विपन्निवारक तथापि अवलोकन योग्य, दृष्कृतों का नाशक था। विपन्निवारक, तपश्चर्या के उत्पादक, अकस्मात् आये हुये वेदव्यास को राजा ने साक्षात् शरीरी सुकृत–पुत्र्ज की भाँति देखा।

---

भगवान वेदव्यास, आसनासीन होने पर बैठ जाने पर शरद ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान मनोहर ऊर्ध्व प्रसरणकारी तेजः समूह से उन्नत डील–डौल में बड़े मालूम पड़ते थे। उनके शरीर का रंग हल्का नीला था। उनके शिर पर पीले वर्ण की जटा थी, अतः वे बिजली से युक्त मेघ के समान दिखलाई पड़ते थे। उनका आकार शान्त था, जिससे उनके अन्तःकरण के सौम्य भाव स्पष्ट झलक रहे थे। सौम्य और विश्वासपूर्ण अवलोकन से प्रतीत होता था कि उनसे कभी सम्भाषण हो चुका है।

अमृतमयी किरणों के परिस्रवणकारी और शीतल ज्योतिः सम्पन्न चन्द्रमा के दर्शन से मेरे नेत्र तृप्त हो गये। इस समय बान्धवों के वियोगजनित दुःख का परित्याग कर मेरा हृदय पुनः जीवित हो उठा है। चारो भाइयों ने चित से संशय का परित्याग करके कार्यभार के ऊपर विचार किया था; अतः दुःख का भार दूर हो गया था, परन्तु भातृप्रेम के कारण फिर से उन्होंने एकत्र कर के मन से समान भागों में मानों विभक्त कर लिया, जिसके कारण वह हल्का मालूम पड़ने लगा। यह शत्रुकृत पराभव, आपलोगों के पूर्वकृत पराक्रम के कार्य पर परदा डालता हुआ; आपने पराक्रम का कार्य कभी किया ही नहीं है। इस तरह की प्रसिद्धि ख्याति लोगों के बीच में फैलता है और जैसे दिन का अवशिष्ट भाग दिशाओं में फैली हुई सूर्य की किरणों का संहार कर डालता है वैसे ही वह निकार पराभव आपके उत्तरकाल की स्थिरता का संहार कर रहा है।

कार्य में न लाने के कारण का तेज अस्त्र लज्जित की तरह कुण्ठित हो गये हैं, इनसे आप का तेज मन्द पड़ गया है। आपकेयश के हस्र जाने के कारण बिना जल के अर्थात् सूख हुये समुद्र की तरह सुन्दर नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं, प्रत्युत मालूम पड़ता है आपने अपना स्वरूप बदल दिया है। दुःशासन के क्रोधरूप घसीटे जाने के कारण धूल से भरे हुये असहाय की तरह ईश्वर के भरोसे रहने वाले इन मेरे केशपाशों में जिस आपका पराक्रम और बल–दोनों जुगुप्सा को प्राप्त हुए हैं, क्या आप वही अर्जुन हैं ? जो सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ हो, वही क्षत्रिय है। जिसकी कर्म कार्य करने में अर्थात् संग्राम में कार्य करने की शक्ति हो, उसी का नाम कार्मुक है यदि इन दोनों प्रकार की व्युत्पत्तियों के होते हुये भी व्युत्पत्ति का अर्थ सुसंघटित नहीं होता अर्थात् ये दोनों क्षत्रिय और कामुर्क अपने अवयवार्थ के अनुकूल कार्य करने में असमर्थ पाये जाते हैं, तो व्याकरणशास्त्र के अनुसार इन शब्दों की व्युत्पत्ति करके इनका साधन करना सब व्यर्थ है अर्थात् क्षत्रिय को सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए और धनुष को समर में कार्य–कुशलता का प्रदर्शन करना चाहिए।

एक श्लोक में उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों अलंकार एक साथ हैं, किन्तु उत्प्रेक्षा अतीव मधुर है। यहाँ उपमा उत्प्रेक्षा से अनुप्राणित होकर अधिक उत्कर्ष को प्राप्त कर रही है। सम आदि गुण पार्थ के द्वारा होनेवाली उन्नति की प्रतीक्षा कर रहे हैं और वे हमलोगों के तरह ही दुःखी हो रहे हैं। इन सब बातों से हमलोगों की समानता करते हुये, की तरह आपके वे शमादि गुण है। महावर की लालिमा से रन्जित अधर किसलय की शोभा से मानों अपनी तुलना कर रही धान की रक्षा में लगी हुई स्त्रियों का वर्णन उत्प्रेक्षा के कारण अत्यन्त मनोज्ञ हो गया है। इसी तरह एक महान वृषभ अन्य वृषभ के साथ युद्ध करके उसे पराजित कर विजय–लाभ कर गंभीर गर्जना करता हुआ नदी के तट को ढाह रहा था। वह गायों का राजा अत्यन्त हृष्ट–पुष्ट मानों साक्षात् दर्प ही महोक्ष के रूप में उपस्थित हुआ था। इसी तरह एक श्लोक में अर्जुन के कुतूहल के विषय में चर्चा करते हुए भारवि अर्जुन के कुतूहल के विषय में चर्चा करते हुए भारवि कहते हैं कि अर्जुन को ऐसा कुतूहल उत्पन्न हुआ कि रमणी के जधन प्रदेश से सरकती हुई साड़ी के समय किसी कामुक व्यक्ति को होता है। अर्जुन गायों के पास अहीरों गोपालकों को देखा। वे साथ–साथ जन्म लेने के कारण गायों के उनके कुटुम्बी बन गये थे। उन्हें वन घर से भी अधिक प्यारा था। स्वभाव की कोमलता भोलापन मानों वे गायों से सीख रहे थे। दधिमन्थन कार्यों में लगी हुई उन ग्वालिनियों के ओठ श्वास के रूक जाने से प्रकम्पित हो रहे थे उससे वे लता के सदृश मालूम पड़ती थी। जिसका एक ही पत्ता किसी तरह हिल गया हो। हाथों से मन्थन के दण्ड के संचालन से उनका पार्श्व प्रदेश विवृत दिखलाई पड़ रहा था। और नितम्ब भी ढुलक रहे थे।

इस हिमालय पर सुन्दरियों के भौहे के समान कुटिल अतियुक्त जल से मन्द–मन्द चलते हुए वायु से कमल कम्पित हो रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है मानों वे हाव–भाव पूर्वक नृत्य सन्तोषार्थ बड़े–बड़े फाटकों से युक्त नगर निर्मित कराया था वहीं कैलाश के समीप में समागत सूर्य भगवान का समय के पहले सदृश, इन्द्रनील–मणि की किरणों से सूर्य की किरणे परस्पर संघटित होकर कन्दराओं को प्रकाशित नहीं कर सकती है और इस तरह दीख पड़ती हैं, मानों अन्धकार से मिली हुई है।

पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गलोक के निवासी एक दूसरे से अदृष्ट होकर इस हिमालय पर निवास करते हैं; अतः मालूम पड़ता है कि शङ्.कर भगवान ने अपने यश के प्रचार के लिये हिमालय के विपुल नितम्ब के समान मध्य भाग पर मेघ जलवर्षण कर निवृत हो जाने से धवल वर्ण के हो गये हैं। अब इनमें बिजली का प्रकाश बिल्कुल नहीं रह गया है। ये मेघ गंभीर गर्जन कर रहें। इन बादलों से यह हिमवान सपक्ष दिखलाई पड़ता है। पहले तो पर्वतों को पक्ष होते थे जिससे वे उड़ते थे। उड़ते–उड़ते जहाँ बैठ जाते थे, वहाँ के धन–जन को नष्ट–भ्रष्ट कर देते थे। यद्यपि यह पक्षरहित है तो भी इन मेघों से पक्षवान् उत्प्रेक्षित होता है। इस हिमालय पर अभिनव विकसित अड़हुल पुष्प के समान अरूण कान्तियुक्त पद्यमरागादि महामणियाँ विराज रही हैं। प्रकाशित होते हुए इन महामणियों के समूह से संघटित होकर हेमयुक्त शिखरों पर सांयकाल की किरणों के सदृश परिस्फुरण करती हुई यह हिमालय धारण करता है। सूर्य की किरणे सांयकाल को पीली और लालवर्ण विमिश्रित दिखलाई पड़ती है। उसी तरह हिमालय सुवर्ण का पीला और पद्मराज का अरूण प्रकाश दोनों के एकत्रित होने के कारण सायंकालीन द्युति धारण करता है।

वह पुरूष हिमालय उच्च शिखर पर आसीन होकर चौदहों भुवनों को जीतने वाले तेज से पर्वत, समुद्र, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओं से युक्त सम्पूर्ण विश्व को उदरस्थ बनाते हुए के सदृश दृष्टिगोचर हो रहा था। वह पुरूष मालती पुष्प के समान धवल कपाल कुमुद को आप्लुत करती हुई चन्द्रमा की किरणों को, जो केशों को व्याप्त कर प्रसरण कर रही थीं। गंगा के जल के ललाटस्थ चन्द्रमा की किरणों से व्याप्त हो रहा था, उन किरणों को धारण करते हुए शंकर जी इस प्रकार मालूम पड़ते थे कि जैसे वे जाह्नवी के बचे हुए जल को धारण करते हों। शंकर के अर्जुन पर वाणप्रक्षेप करने पर अजगव धनुष की टंकार से पूर्ण प्रतिध्वनित करते हुए शब्द किया। मनःशिला के खण्ड के सदृश कान्तिपुंज से आवृत आकाश, जो विशाल वक्षस्थल से प्रेरित हो रहा था, गरूड़ों के आगे–आगे पदार्पण करते हुए की भाँति ज्ञात होता था।

उस रणस्थल में अस्त्रोत्य प्रचण्डाग्नि जलप्रवाह के सम्पर्क से छनछनाहट की ध्वनि करता हुआ तथा बिजली के चमक जाने से और अधिक कान्ति से सम्पन्न होता हुआ वर्षापात से उत्थित धूम समूह से व्याप्त होकर बुझते समय अनेक मालूम पड़ने लगा। कवच पतन के समय भूमि पर पड़े हुये तरकशों ने अचेतन होते हुए भी अपने स्वामी की विपदावस्था में सहायता करने में असमर्थ होकर नीचे की तरफ मुख करके चेतन पदार्थों की विशेष रूप से शिक्षा दिया। देवताओं के विमानवाहक बड़े–बड़े हंस, जिनके कण्ठ में पड़े हुए आभूषण झंकृत हो रहे थे, दौड़ते हुए इस तरह मालूम पड़ते थे कि मानो परिश्रम से फैलाये हुए पक्षों से आकाश का आलिंगन करते हों।

**संदर्भ सूचीः**


1. अनुशासतमित्यनाकुलं नयवर्त्माकुलमर्जुनाग्रजम्।
   स्वयमर्थ इवाभिवाण्छितस्तमभीयाय पराशरात्मजः।।
   तं युधिष्ठिरं पराशरात्मजो वेदव्यासः स्वयमभिवाण्छितोअ्र्थ इव।
   साक्षान्मनोरथ इवेव्युत्प्रेक्षा।

   –किरातार्जुनीयम्, 2.54
2. वही पृष्ठ2.55.56
3. ततः शरच्चन्द्र कराभिरामैरूत्सर्पिभिः प्रांशुमिवांशुजालैः।
   बिभ्राणमानीलारूचं पिशङ्गीर्जटास्तडित्वन्तमिवाम्बुवाहम्।।
   उत्सर्पिभिरूहर्वप्रसारिभिरंशुजालैः प्रांशुमुन्नतमिव स्थितमित्युत्प्रेक्षा।
   पुनरानीलरूच कृष्णवर्ण पिशङ्गी पिङ्गलवर्णाः। जटां बिभ्राणं
   धारयन्तमत एवं तडित्वन्तं विद्युद्युक्तमम्बुवाहमिव स्थिव्रतेमित्युत्प्रेक्षा।

   –वही, 3.1
4. वीक्ष्य रत्नचषकेष्वतिरिक्तां कान्तदन्तपदमण्डनलक्ष्मीम्।
   जज्ञिरे बहुमता प्रमदानामोष्ठयावकनुदो मधुवाराः।।

   –वही, 9.59.
5. हंसा बृहन्तः सुरसद्यमवाहाः संहदिकण्ठाभरणाः पतन्तः।
   चक्रुः प्रयत्नेन विकीर्यमाणैर्व्योम्नः परिष्वङ्गमिवाग्रपक्षैः।।
   व्योम्नः परिष्वङ्गमलिङगनं चक्रुरिवेव्युत्प्रेक्षा।

   –वही, 18.19